

सड़कों पर उतरा युवा आक्रोश : जेन जी दरअसल एक वर्ग-संघर्ष है

20 जुलाई को हज़ारों नौजवानों ने जंतर-मंतर से संसद तक मार्च किया। उनके हाथों में पोस्टर थे, और जुबान पर नारे। वे केंद्रीय शिक्षा मंत्री धर्मेन्द्र प्रधान का इस्तीफ़ा माँग रहे थे। कारण ? एक के बाद एक परीक्षाओं में धाँधली, पेपर लीक, रद्द होते इम्तिहान, और इस सबके बाद छात्रों के नुक़सान की ज़िम्मेदारी लेने से मुँह फेरती एक सरकार। दिल्ली पुलिस ने जवाब में बैरिकेड लगाए, आँसू गैस के गोले छोड़े, और लाठीचार्ज किया। कुछ प्रदर्शनकारियों को हिरासत में ले लिया ; बाक़ी छोटी-छोटी टोलियों में बँटकर संसद की ओर बढ़ते रहे। सोशल मीडिया पर महज़ व्यंग्य के रूप में शुरू हुआ यह आंदोलन अब सड़कों पर आकर सत्ता से आमने-सामने की टक्कर ले रहा है।

प्रदर्शनकारी खुद को कॉकरोच जनता पार्टी (सीजेपी) के सदस्य कह रहे हैं। क्योंकि एक जज ने अदालती टिप्पणी में एक्टिविस्टों और बेरोज़गार नौजवानों को कॉकरोच और परजीवी कह कर नीचा दिखाया था। इस अपमान को नौजवानों ने सामूहिक ललकार का तमज़ा बना लिया। अगर देश के हुक्मरान अपने बेरोज़गार नौजवानों को कॉकरोच समझते हैं, तो कॉकरोच अब इकट्ठे होकर संघर्ष करेंगे। भारतीय जनता पार्टी का कटाक्ष करते हुए इसे कॉकरोच जनता पार्टी का नाम दिया गया है, लेकिन इस नई पार्टी में उस पूरी पीढ़ी के अनुभव हैं, जिसे बार-बार कलंकित किया जाता रहा। आर्थिक व्यवस्था की नाकामी के लिए अलग अलग तरीकों से इस पीढ़ी को ज़िम्मेदार बताया गया। कभी कहा गया कि ये ज़रूरत से ज्यादा हैं, और कभी कहा गया कि ये नाशुके हैं, नाकारा हैं। इन्हें रोज़गार देने की बजाए, पूँजीवादी व्यवस्था इन्हें डिस्पोज़ेबल (इस्तेमाल के बाद फेंकने लायक़) समझती रही है।

6 जून को दिल्ली में हुए अपने पहले बड़े प्रदर्शन के बाद से यह आंदोलन पुणे, मुंबई, बेंगलुरु, लखनऊ और नागपुर जैसे शहरों तक फैल चुका है। समर्थकों ने जंतर-मंतर पर सिट-इन मोर्चा शुरू किया। वहीं जलवायु कार्यकर्ता सोनम वांगचुक उनकी माँगों के समर्थन में भुख हड़ताल पर बैठ गए। सही तरीके से जवाब देने की बजाए उन्हें जबरन अस्पताल पहुँचा दिया गया। आंदोलन की माँगें स्पष्ट हैं: दाखिला व भर्ती परीक्षाओं की साख पुनः स्थापित हो, आत्महत्या कर गए छात्रों के परिवारों को मुआवज़ा मिले, भ्रष्टाचार में डूबी परीक्षा-व्यवस्था को दुरुस्त किया जाए, और शिक्षा मंत्री इस्तीफ़ा दें। पर इन माँगों के पीछे एक बड़ा सामाजिक संकट छिपा है। परीक्षा में आने वाला पेपर सिर्फ़ सवालों से भरा एक कागज़ नहीं होता। बल्कि लाखों मेहनतकश परिवारों के लिए वह बरसों की बचत, कुर्बानी, पढ़ाई और उम्मीद का दूसरा नाम है। जब वह पेपर लीक हो जाता है या इम्तिहान रद्द हो जाता है, तो एक पूरे परिवार की योजनाएँ नाकामयाब हो जाती हैं।



बढ़ते विरोध प्रदर्शन (विक्रान्त भीसे, 2021)

मीडिया कॉकरोच आंदोलन को हिंदुस्तान का पहला 'जेन ज़ी प्रदर्शन' बता रहा है। इस बात में कुछ सच्चाई है। इस आंदोलन की भाषा सोशल मीडिया से जन्मी है, तथा यह आंदोलन मीम, व्यंग्य, पैरोडी, छोटे वीडियो व अपना ही मज़ाक बनाने की कला का बड़ी कुशलता से इस्तेमाल कर रहा है। इसमें शामिल कई नौजवानों ने प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी की सरकार के अलावा कोई और सरकार नहीं देखी है। उनकी राजनीतिक शब्दावली ऐसे हालात में विकसित हुई है, जिसमें टेलीविज़न मीडिया सत्ता के आगे घुटने टेक चुका है, असहमति को जुर्म बना दिया गया है, और इंटरनेट एक साथ निगरानी का औज़ार भी है तथा वो बची हुई जगह भी है जहाँ विरोध की आवाज़ तेज़ी से फैलती है। पर 'जेन ज़ी' शब्द पूर्ण विश्लेषण को दबा देता है। यह समाजशास्त्र के मुखौटे में दरअसल एक विपणन श्रेणी (मार्केटिंग कैटेगरी) है। इस शब्दावली के तहत एक खेतिहर मज़दूर की बेटी और एक अरबपति का बेटा एक ही श्रेणी में आते हैं क्योंकि वे उम्र में एक दूसरे के बराबर हैं। जेनरेशन परीक्षा नहीं देती, जेनरेशन नौकरी नहीं ढूँढ़ती, जेनरेशन डिलीवरी का काम नहीं करती, जेनरेशन कोचिंग की फ़ीस के लिए कर्ज़ नहीं लेती, ये सभी काम एक सामाजिक वर्ग करता है। असली सवाल यह नहीं कि ये सभी नौजवान कब पैदा हुए। सवाल यह है कि उन्हें कैसी आर्थिक व्यवस्था विरासत में मिली है, और इस व्यवस्था में उनके लिए कोई जगह है या नहीं।

ये नौजवान प्रदर्शनकारी इसलिए बगावत पर नहीं उतरे कि उनका अटेन्शन स्पैन कम है, या सत्ता से उन्हें कोई खास चिढ़

है। वे इसलिए बग़ावत पर हैं क्योंकि पूँजीवाद उन्हें एक सम्मानजनक आर्थिक ज़िंदगी नहीं दे सका है। उनसे कहा गया कि पढ़ो, डिग्रियाँ हासिल करो, नए हुनर सीखो, रेस में आगे रहने की कोशिश करते रहो, 'उद्यमी' बनो। उनके परिवारों ने कर्ज़ लिए, ज़मीनें बेच दीं, इलाज के खर्च टाले, घर के खर्च घटाए, सिर्फ़ इसलिए कि पढ़ाई और कोचिंग का पैसा जुटा सकें। पर इस बेरहम सफ़र के अंत में अनेकों परिवारों को पता चलता है कि जिस नौकरी का वादा था, वह कहीं है ही नहीं। कुछ नौजवानों के हाथ कॉन्ट्रैक्ट पर अस्थाई नौकरियाँ आती हैं, या बिना तनख्वाह की इंटरनशिप, या प्लेटफ़ॉर्म-आधारित गिग वर्क, या फिर ऐसी नौकरियाँ जहाँ वेतन का उनकी योग्यता से कोई नाता नहीं।

यह समस्या सरकारी आँकड़ों में भी दर्ज है। सरकार के 'पीरियॉडिक लेबर फ़ोर्स सर्वे' (2025) के मुताबिक पंद्रह से उन्तीस साल के नौजवानों में 9.9 फ़ीसदी बेरोज़गारी है। जबकि शहरी नौजवानों में बेरोज़गारी 13.6 फ़ीसदी है। इसके साथ, पंद्रह से उन्तीस साल के पच्चीस प्रतिशत युवा न नौकरी कर रहे हैं, न पढ़ाई, और न ही कोई प्रशिक्षण। ये चौकाने वाले आँकड़े भी बहुत कुछ नहीं बताते। ये नहीं बताते कि बड़ी संख्या में युवा अंडर-एम्प्लॉमेंट में हैं (उन्हें अपनी योग्यता के अनुसार काम और वेतन नहीं मिलता)। ये आँकड़े नहीं बताते कि पेपर देने वालों के पीछे परिवारों की अन-पेड मेहनत लगती है। ये आँकड़े उस लाचारी व ना-उम्मीदी को नहीं दर्शाते जो इंसान को किसी भी काम को 'रोज़गार' मान लेने पर मजबूर करती है। भारत के सिर्फ़ 23.6 फ़ीसदी वर्कर नियमित तनख्वाह वाली नौकरी में हैं, जबकि 56.2 फ़ीसदी 'सेल्फ़-एम्प्लॉएमेंट' में हैं। 'सेल्फ़-एम्प्लॉएमेंट' एक ऐसी श्रेणी है जिसमें करोड़ों कमाने वाले पेशेवरों से लेकर रेहड़ी लगाने वाले और पारिवारिक खेतों में बिना मज़दूरी के काम करने वाले सभी लोग शामिल हैं।

'इंस्टीट्यूट फ़ॉर ह्यूमन डेवलपमेंट' और अंतरराष्ट्रीय श्रम संगठन की 'इंडिया एम्प्लॉयमेंट रिपोर्ट' तस्वीर को और भी साफ़ कर देती है। 2022 में स्नातक (ग्रेजुएशन) कर चुके नौजवानों में 29.1 फ़ीसदी बेरोज़गारी थी, उन नौजवानों से नौ गुना ज्यादा जो पढ़-लिख नहीं सकते थे। करीब 82 फ़ीसदी कामगार असंगठित क्षेत्र में थे, और तक़रीबन 90 फ़ीसदी अनौपचारिक रूप से काम पर लगे थे। नियमित वर्करों का वेतन या तो ज्यों का त्यों रहा या कम हुआ है। प्लेटफ़ॉर्म-आधारित रोज़गार बढ़ा है, जो कि असंगठित मज़दूरी का विस्तार है, जहाँ काम के बदले कोई सामाजिक सुरक्षा नहीं मिलती पर वर्कर लगातार डिजिटल निगरानी में रहते हैं। इस रिपोर्ट के मुताबिक पहली नौकरी के लिए इंतज़ार का समय औसतन एक साल से ज्यादा था, और तकनीकी रूप से प्रशिक्षित नौजवान अपने प्रशिक्षण से कम दर्जे का काम कर रहे थे।

यही विरोधाभास इन प्रदर्शनों की जड़ है। शिक्षा ने भारत के नौजवानों की आकांक्षा और क्षमता तो बढ़ाई, पर अर्थव्यवस्था ने उनके लिए ढंग की नौकरियों की गिनती नहीं बढ़ाई। जितना ज्यादा वे पढ़ते हैं, उतना ही व्यवस्था द्वारा किए गए वादे से दूर होते जाते हैं। उनकी डिग्रियाँ उनकी नाकाबिलियत का नहीं, बल्कि उस आर्थिक ढाँचे की नाकामी का सबूत हैं जो वित्त, पूँजी-प्रधान उत्पादन, निजीकरण और कॉरपोरेट एलीट वर्ग को मालामाल करने के लिए बना है।

यह संकट मोदी सरकार से शुरू नहीं हुआ, पर भाजपा के बारह साल के राज ने इसे बढ़ाया ज़रूर है। नोटबंदी और जीएसटी ने छोटे कारोबार तबाह कर दिए। ये वो कारोबार थे जो ऐतिहासिक रूप से बड़ी तादाद में जनता को काम देते रहे हैं। सरकारी भर्तियाँ या तो टलती रहीं या घटा दी गईं। खाली पद अब भी खाली पड़े हैं। पक्की नौकरियों की जगह कॉन्ट्रैक्ट की नौकरियों ने ले ली है। लाखों लोग हर साल श्रम-बाज़ार में दाखिल होते हैं, लेकिन उन्हें काम देने के लिए पर्याप्त विनिर्माण (मैन्युफ़ैक्चरिंग सेक्टर) का विस्तार नहीं हुआ है। इस बीच सरकारी शिक्षा को लगातार कमज़ोर किया जा रहा है, और कोचिंग के बाज़ार को बढ़ावा मिला है। इस बाज़ार ने परिवारों की वाजिब चिंता को ज़बरदस्त मुनाफ़े का ज़रिया बना लिया है। सरकार जीडीपी, हार्डवे संख्या, डिजिटल भुगतान, यूनिकॉर्न कंपनियों (एक अरब डॉलर मूल्य वाले स्टार्टअप) और अरबपतियों की दौलत आदि के बढ़ने का जश्न मनाती है। पर इनमें से कोई भी आँकड़ा अनगिनत परिवारों के एक सवाल का जवाब नहीं दे सकता, कि नौकरी कहाँ है?



शिक्षित बनो, संगठित हो, संघर्ष करो (विक्रान्त भीसे, 2023)

इसलिए पेपर लीक को महज दफ्तरी भ्रष्टाचार समझना नाकाफी है। ये असल में वर्गीय अन्याय का रूप हैं। लाखों लोग चंद पदों के लिए प्रतिस्पर्धा करते हैं, क्योंकि पक्के काम को जान-बूझकर घटाया गया है। हर उम्मीदवार को फ्रीस भरनी पड़ती है, लंबे सफ़र तय करने पड़ते हैं, पढ़ाई का सामान खरीदना पड़ता है, और कोचिंग सेंटरों में बरसों गँवाने पड़ते हैं। जब किसी परीक्षा में दिक्कत आती है, तो सरकार तकनीकी शब्दावली का प्रयोग करती है और जाँच समितियों के गठन की बात करती है। पर परीक्षा के लिए बैठे नौजवानों की जो जवानी उनसे छीनी गई इसके बारे में कोई बात नहीं होती। उनके लिए पेपर देने का समय घटता जाता है; क़र्ज़ा बढ़ता जाता है; और ज़िंदगी का एक और साल ऐसे ही ख़त्म हो जाता है।

सरकार इन प्रदर्शनों को एक बेसब्र पीढ़ी के भावुक उवाल के रूप में परिभाषित कर इसे नज़रंदाज़ करना चाहेगी। आंदोलन का मज़ाक़ बनाने से लेकर, प्रदर्शनकारियों का दमन, बातचीत का लालच, आंदोलन में फूट डालने की कोशिश आदि सरकार अपने सभी हथियार इस्तेमाल करेगी। नौजवानों से कहा जाएगा कि उनमें तज़ुर्बा नहीं, कि विदेशी ताक़तें उन्हें बहका रही हैं, कि उनका प्रदर्शन देश की छवि दाग़दार कर रहा है। पर यह माँग करने में कुछ भी ऐंटी-नैशनल नहीं कि देश अपने नौजवानों को कोई ढंग का काम दे। भारत को कलंकित तो वह व्यवस्था करती है, जिसे नौजवान उपभोक्ता के रूप में चाहिए, आँकड़े के रूप में चाहिए, डिलीवरी करने वाले के रूप में चाहिए, चुनावी भीड़ के रूप में चाहिए, पर जहाँ

अधिकार रखने वाले वर्कर, आवाज़ रखने वाले नागरिक और भविष्य के हक़दार इंसान के रूप में उनके लिए कोई जगह नहीं है।

कॉकरोच आंदोलन की ऊर्जा बहुत अहम है, पर स्वतःस्फूर्त फूटा आक्रोश और डिजिटल पहुँच सत्ता की जड़ को अकेले नहीं हरा पाएँगे। परीक्षा-सुधार को रोज़गार, सार्वजनिक शिक्षा, श्रम-अधिकारों और आर्थिक पुनर्वितरण की लड़ाई से जोड़कर ही यह आंदोलन लंबे समय तक टिक सकता है। जंतर-मंतर पर बैठे छात्रों का भविष्य कॉन्टैक्ट शिक्षकों, स्कीम-वर्करो, डिलीवरी राइडरो, फ़ैक्ट्री अप्रेंटिस, बेरोज़गार स्नातक युवाओं और ग्रामीण मज़दूरों के भविष्य से जुड़ा है। इस आंदोलन को उन कोशिशों का डटकर विरोध करना होगा, जो संगठित राजनीति, ट्रेड यूनियनों और पुराने छात्र संगठनों को किसी भी ज़माने के खंडहर बताकर खारिज करती हैं। संगठित मज़दूर वर्ग ने जो तजुर्बा कमाया है, वह नौजवानों की बगावत पर बोझ नहीं बनेगा; बल्कि वही एक ऐसा सहारा है जो इस बगावत को ताक़त और दिशा दे सकता है।

‘कॉकरोच’ नाम में एक अनचाहा ऐतिहासिक सच छुपा है। कॉकरोच इसलिए ज़िंदा बचे रहते हैं क्योंकि उन्हें मिटाना मुश्किल है। पर सड़कों पर उतरे ये नौजवान महज़ इतना नहीं माँग रहे कि एक सड़ रही व्यवस्था की दरारों में वे किसी तरह ज़िंदा रह सकें। वे जीना चाहते हैं, काम करना चाहते हैं, जो कुछ पढ़ा-सीखा है उसे इस्तेमाल में लाना चाहते हैं, और गरिमा के साथ समाज के काम आना चाहते हैं। उनका गुस्सा देखने में एक जेनरेशन का गुस्सा लगता है, पर असल में यह एक वर्ग का गुस्सा है। वामपंथ के लिए ज़रूरी है कि इस आक्रोश का महिमामंडन करने, या केवल बाहर से इसे उपदेश देने से बचे। वामपंथ का काम है कि इस आंदोलन के साथ संवाद बनाए, उस संपूर्ण ढाँचे की शिनाख़्त करने में आंदोलन की मदद करे जो नौजवानों की तकलीफ़ का कारण है, तथा आंदोलन की तात्कालिक माँगों को ऐसे कार्यक्रम से जोड़े जो लाखों पक्की व समाज के काम आने वाली नौकरियाँ पैदा कर सके।

संसद के बाहर छोड़ी गई आँसू गैस प्रदर्शनकारियों के उठाए सवाल का जवाब नहीं है। देश के हुक्मरान उन्हें बैरिकेड के पीछे धकेल सकते हैं, उन्हें कीड़े, परजीवी या उपद्रवी कह सकते हैं। पर जो समाज अपने नौजवानों के लिए जगह बनाने से इनकार करेगा, वह अंततः यही देखेगा कि नौजवानों ने खुद उस समाज का नए सिरे से निर्माण करने की ठान ली है।

-विजय प्रसाद